RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper
Available online at: www.rhimrj.co.in

अवधी लघुकथाओं में समाज

डॉ. अनीता शुक्ला
हिन्दी विभाग, कला संकाय,
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

कहते हैं, लघुकथा आज के व्यस्त जीवन की उपज है। मनुष्य का जीवन जटिल और व्यस्त होता जा रहा है। आधुनिक मनुष्य के पास सब कुछ है, बस समय नहीं है। अतः वह चाहता है कि वह जो कुछ जाने सूत्र रूप में जाने, जो कुछ कहे सूत्र रूप में कहे। आज के मनुष्य की इसी व्यस्तता ने शायद 'फास्ट फूड' तथा 'इंस्टंट पेयों' जैसे पदार्थों को जन्म दिया है। कहा यह भी जा रहा है कि लघु कथा भी ऐसी ही किसी स्थिति से जन्मीं होगी, लेकिन मैं इस बात से अपनी असहमति प्रकट करती हूं। क्योंकि यदि ऐसा होता तो लघुकथाएं मात्र आधुनिक शिष्ट भारतीय साहित्य में ही मिलतीं। जबकि नैतिक, धार्मिक क्षेत्र के दृष्टांतों के रूप में जातक, पंचतंत्र, महाभारत, बाइबिल, कुरआन शरीफ में भी ईश्वर की कहानियां लघुकथाओं के रूप में पायी जाती हैं, जो शिक्षित वर्ग तथा धार्मिक गुरुओं द्वारा लिखी/कही गई हैं। किंतु यहां उस वर्ग में प्रचलित लघुकथाओं पर चर्चा करना मेरा उद्देश्य है, जिसे न कथा साहित्य का ज्ञान है, न उसकी अवधारणा, स्वरूप तथा तत्त्वों से परिचय। परंतु लघुकथाएं यहां मौजूद हैं और अपने उन तमाम लक्षणों, विशेषताओं के साथ मौजूद हैं, जो आज आंदोलन का रूप ले चुकी लघुकथाओं के लिए अनिवार्य है। ये वे लघुकथाएं हैं जो कम शब्दों में बड़ी बात कहती हैं, सतसैया के दोहों की तरह मर्म को बेधती हैं तथा आधुनिक युग में उपजे कई विमर्शों को अंकुरित होने के लिए ज़मीन भी तैयार करती हैं।

मैं यहां बात करने जा रही हूं अवध क्षेत्र में प्रचलित, लोकबोली में वर्णित लघु कथाओं की, जिन्हें लोकसाहित्य के एक भेद 'लोककथा' के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता और न ही आम जनमानस द्वारा कही जाने वाली किस्से – कहानियों के अंतर्गत रखा जा सकता है। इसे 'लोकलघुकथा' कहा जा सकता है, क्योंकि ये कम-से-कम शब्दों में कही गई लोक की अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम हैं।

मैं स्पष्ट करना चाहूंगी कि 'अवधी' पूर्वी हिंदी की एक बोली है। जिसकी उत्पत्ति अन्य भारतीय भाषाओं की तरह ही 1000 या 1100 ई. के आसपास हुई. डॉ. भोलानाथ तिवारी इसे उस अर्धमागधी अपभ्रंश से उत्पन्न मानते हैं जो अवधी से पूर्व इस क्षेत्र में प्रयुक्त होती थी। वे इसे 'कोसली' से उत्पन्न कहना भी उपयुक्त समझते हैं। इतिहास के अध्येता इस बात से परिचित हैं कि कोसल राज्य भारत के प्राचीनतम राज्यों में माना जाता है और देशी भाषा के रूप में 'कोसली' का उल्लेख 8वीं सदी के ग्रंथ कुवलयमाला में मिलता है।"[1]

'अवधी' शब्द एक विशेषण है, जिसका अर्थ है – 'अवध का'. यहां बोली या भाषा के रूप में 'अवधी' का अर्थ हुआ – अवध क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली या भाषा. अवधी का क्षेत्र लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, मिर्जापुर (अंशतः), उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फैज़ाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सुलतानपुर, प्रतापगढ, बाराबंकी आदि हैं।[2]

अवधी में साहित्य तथा लोकसाहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। तुलसी का 'रामचरितमानस' इसे प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुंचाता है। मैं आज यहां अवधी बोली में प्रचलित लोकसाहित्य के एक अंग 'लोकलघुकथा' पर बात करना चाहूंगी। जिसकी चर्चा न तो अभी तक मेरी जानकारी में किसी संगोष्ठी में की गई है और न ही लोकसाहित्य के अध्येताओं तथा संकलनकर्ताओं ने – जिनमें कुछ प्रतिष्ठित नाम हैं-स्व. श्री रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय – जब लोकसाहित्य के भेदोपभेद किए तो 'लोकलघुकथा' की चर्चा की। स्व. श्री रामनरेश त्रिपाठी ने लोकसाहित्य के 28 भेद किए हैं।[3] किंतु उन्होंने भी 'लोकलघुकथा' नामक भेद नहीं किया है। विधा और रचनागत विशेषताओं के आधार पर अवधी लोकसाहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।[4]

1. लोकगीत (Folk lyrics)
2. लोकगाथा (Folk Balades)
3. लोककथा (Folk Tales)
4. लोकनाट्य (Folk Drama)
5. लोकसुभाषित (Folk Sayings)

जो सामान्यत: लोकसाहित्य के सभी अध्येताओं द्वारा स्वीकार्य है।

मुझे अवधी की तीन लघुकथाएं प्राप्त हुईं। ये लघुकथाएं लिपिबद्ध अवस्था में नहीं बल्कि अवध क्षेत्र के लोगों द्वारा यथाअवसर अपनी भावुक अभिव्यक्तियों के प्रमाणस्वरूप कही जाती हैं। इनका मौखिक संचरण होता है। मैं यहां संस्कृत विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा को धन्यवाद करना चाहूंगी जिन्होंने इस विषय पर संगोष्ठी आयोजित कर मेरा ध्यान इस तरफ आकृष्ट किया। मुझे जो तीन लघुकथाएं मिली हैं, उन तीनों के केंद्र में नारी है। लघुकथाएँ एवं उनका विश्लेषण निम्नलिखित हैं -

अवधी लोकलघुकथा –

यक जनी क मंसेधू वनसे कबहुं बोलत बतियात नाय रहे। यक दिन वे अपनेन चना के खेते मा साग खोंटय लागीं। चना फुलाय वाला रहा। वनकै मंसेधू दूरि से देखिन औ जोर से चिल्लाइन – 'कवन आय रे'। ई सुनतै वै आपन मौनी-डौली फेंक दिहीं औ खुस होइकै सबका बताईं – आज हमार पिया हमका –'कवन आय रे' कहिन।

हिंदी रूपांतर –

एक स्त्री का पति उसे न तो प्यार करता है, न उसे पत्नी के रूप में सम्मान देता है और न ही उससे बात करता है। एक दिन वह स्त्री अपने ही चने के खेत में उस समय चने का साग खोंटने जाती है, जब उसमें फूल आ रहे होते हैं, अर्थात एक प्रकार से अपना ही नुकसान करने जाती है। उसका पति दूर से देखता है। इस बात से अनभिज्ञ कि वह उसकी पत्नी है, फसल को नुकसान करने से रोकने हेतु वह ज़ोर से चिल्लाता है – 'कौन है रे!' अनजाने में ही किए गए अपने पति के इस संबोधन से वह सुखद संतोष का अनुभव करती है कि आज मेरे पति ने मुझे बुलाया तो सही और सबको बताती है।

अपने ही खेत में, अपना नुकसान करके अपने पति का ध्यान आकृष्ट करना तथा उसकी फटकार सुनकर फूले न समाना नारी की पराश्रितता तथा समाज में उसकी दोयम दर्जे की स्थिति का ही परिचायक है। भक्तिकाल की कृष्ण भक्त – संत कवयित्री मीरा जब कहती हैं – 'हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय।' तो क्या वे भारतीय लोकनारी के साथ भाव-साम्य करते हुए स्त्री को मनुष्य समझते हुए उसे प्रेम एवं सम्मान देने की ही बात नहीं कहतीं? एक बड़ा प्रश्न है। सम्मान एवं अधिकार की आकांक्षा किसे नहीं होती? किंतु औपनिषदिक, पौराणिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय समाज में नारी की स्थिति पुरुष की वासना-कामना पूर्ति के साधन से अधिक कुछ नहीं रही। मीरा को विष का प्याला भेज दिया जाता है। द्रौपदी को पांच पतियों में बांट दिया जाता है। नारी जब तक भार्या है, प्रिया है.... सब ठीक है, जहां वह पंडिता बनने का प्रयास करती है, उसे चुप करने के हर संभव प्रयास किए जाते हैं। अवधी की उक्त लघुकथा की पत्नी के मन में कहीं तो यह प्रश्न, यह आकांक्षा जगी होगी कि मेरा पति मुझसे बात करे, मुझे उचित सम्मान दे। यह अलग बात है कि वह मीरा की तरह गृहत्याग कर 'संतन के संग बैठ लोकलाज खोने' तथा 'जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई' की घोषणा नहीं कर पाती। क्योंकि सामाजिक व्यवस्था से टकराने तथा उससे प्रश्न करने का साहस सबमें नहीं होता वरना द्रौपदी भी पांच पतियों के बीच बंट जाने को चुपचाप न तैयार होतीं।

पति के साथ निकटता तथा उससे प्रेम एवं स्नेह प्राप्त करने की आकांक्षा निम्नलिखित लोकसुभाषित में भी द्रष्टव्य है – 'आगि लागि घर जरिगा, अति भल कीन, पिउ के हाथ घइलवा भरि भरि दीन।' यह समाज में उपेक्षित नारी की व्यथा का एक अन्य चित्र है।

पितृसत्ताप्रधान भारतीय समाज ने स्त्रियों को कभी मनुष्य नहीं समझा और समाज की इस सोच ने स्वयं स्त्रियों की मानसिकता को इतनी गहराई से प्रभावित किया और स्त्रियां इस अनुकूलन के षड़यंत्र का इस कदर शिकार हुईं कि वे अपने अस्तित्व को ही भूल गईं। उनकी सोच, उनके क्रियाकलाप, उनके दैनिक कार्यों के उद्देश्य के केंद्र में सदैव पुरुष रहा। यहां तक कि अपनी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति को भी इन स्त्रियों ने सदैव दूसरे स्थान पर रखा, जो कि जीने के लिए आवश्यक है। एक अवधी लघुकथा की स्त्री जब खाना बनाती है तो वह सिर्फ अपने पति तथा पुत्र के लिए बनाती है। वह खुद तो जो उन दोनों से बचेगा वही खाकर रह लेगी।

अवधी लोकलघुकथा –

यक जनी यक दिन मोटि-मोटि दुइ रोटी बनाईं। यक रोटी अपने बेटवा क दिहीं, यक रोटी अपने मनई का। बेटवा पूछिस – माई, तू काव खाबू? वे कहीं, अरे ए बेटवा, आधी तू दय दिहा, आधी तोहार बाबू, हमार होय जाए।

हिन्दी रूपांतर –

एक स्त्री ने, जिसके परिवार में वह, उसका पति तथा उसका पुत्र है, एक दिन खाने के लिए दो मोटी-मोटी रोटियां बनाईं। पति-पुत्र खाने बैठे, दोनों को एक-एक रोटी दी। बेटे ने पूछा – मां, आपने दो ही रोटियां बनाईं, दोनों हम दोनों को परोस दिया। आप क्या खाएंगी? मां ने कहा – बेटा, आधी तुम अपने में से दे देना, आधी तुम्हारे पिता, मेरा हो जाएगा।

यहां विद्वान 'आधी' शब्द का शाब्दिक अर्थ न ग्रहण करें, जिसे मिलाकर एक हो जाता है। क्योंकि 'आधी' शब्द के प्रयोग के पीछे लोकनारी का कोई कूटनीतिक उद्देश्य नहीं है। बल्कि इस लघुकथा में 'आधी' का अर्थ 'थोड़े' से लिया जा सकता है। अर्थात 'थोड़ी सी रोटी तुम दे देना, थोड़ी तुम्हारे पिता, मैं उसी में संतोष कर लूंगी।'

संतोष ही भारतीय नारी का गहना है। उसे अपने लिए सोचने का भी अधिकार नहीं है। पति, पुत्र तथा परिवार से जो बच जाएगा, उसी में उसे अपनी जैविक आवश्यकता की पूर्ति करना है। लोकगीतों में भी इस प्रकार के चित्रण मिलते हैं। एक भाई अपनी बहन से उसकी ससुराल में मिलने जाता है। बहन को दुखी व कमज़ोर पाकर वह उसका कारण पूछता है। बहन का उत्तर हृदय विदारक है। वह कहती है – मैं कूटती हूं, पीसती हूं, सुबह से शाम तक घर का सारा काम करती हूं, सबके लिए भोजन बनाती हूं और मुझे अंत में बची हुई आखिरी रोटी मिलती है, जिसमें कुत्ते-बिल्लियों का भी हिस्सा होता है। लोकगीत की पंक्ति है- 'पछली टिकरिया भइया हमरा भोजनवा, वहू मंहै कुकुरा बिलरिया हो ना।' अर्थात समाज में स्त्री और कुत्ते-बिल्ली समान हैं? प्रश्न है, एक बड़ा प्रश्न. जो आधुनिक काल में हुए तमाम सुधार आंदोलनों को चुनौती देता है। जहां समाज में स्त्रियों की स्थिति को बेहतर बनाने, सुधारने के प्रयास तो किए गए किंतु आबादी के दूसरे पचास प्रतिशत हिस्से को उन सुधरी हुई शिक्षित, समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर आधुनिकाओं के साथ रहना नहीं सिखाया गया। वरना लकीर से बड़ा बनने का सकारात्मक प्रयास किया जाता, लकीर को मिटा देने का नहीं।

मुझे जो तीसरी लघुकथा मिली है उसके केंद्र में नारी का आभूषण प्रेम है। आभूषण नारी सौंदर्य को बढ़ाने वाले उपादान हैं। आभूषणों के प्रति लालसा प्रत्येक नारी में देखने को मिलती है। कथाकार प्रेमचंद भी नारी के चरित्र के इस आयाम के चित्रण से स्वयं को रोक नहीं सके। 'गबन' की जालपा इसकी प्रमाण है। प्रस्तुत अवधी लोकलघुकथा में नारी के इसी आभूषण प्रेम तथा दिखावे की मनोवृत्ति का चित्रण है।

अवधी लोकलघुकथा –

यक जनीं हंसुली बनवाईं। जब केव वनकै तारीफ नाय किहिस तौ वै आपन घर फूंकि दिहीं। आगि देखिकै गांव कै सब मनई बटुरे। यक जनीं कहीं – बहिनी, तोहार हंसुलिया त बड़ी सुंदरि बा, नई बनवाइव का? वै कहीं – जौ इहै पहिले कहि देतिव तौ हम आपन घरय काहे फूंकित।

हिंदी रूपांतर –

एक स्त्री ने हंसुली बनवाई। जब किसी ने उसकी तारीफ नहीं की तो उस स्त्री ने अपने घर को आग लगा दी। गांव के सब लोग एकत्र हुए। एक स्त्री ने कहा – तुम्हारी हंसुली तो बड़ी सुंदर है! नई बनवाई क्या? उस स्त्री ने कहा – यदि यही पहले कह दिया होता तो मैं अपने घर में आग क्यों लगाती।

अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से वर्णित इस लघुकथा से अवधी लोकनारी की प्रशंसा की आकांक्षा, दिखावे की प्रवृत्ति के साथ आभूषण प्रेम चरम को छूता दिखाई देता है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि लोकसाहित्य का विकास सामूहिक रूप से होता है तथा यह उस समूह विशेष की प्रतिनिधि अभिव्यक्ति होता है। यह लोकजीवन की सजीव एवं सहज अभिव्यक्ति होता है। आनंद पाण्डेय 'भाषा' के लोकसाहित्य विशेषांक में छपे अपने आलेख में लिखते हैं – अवधी में ऐसी कथाएं बहुत कम हैं जिनमें यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई हो। इनमें सामाजिक यथार्थ तो और बिरल रूप में मिलता है। ये कथाएं अपने समय और समाज से कटी हुई हैं। अधिकतर कथाएं तिलिस्मी, ऐयारी और अस्वाभाविक तथा विचित्र घटनाओं पर आधारित हैं।[5]

यहां मैं बड़ी विनम्रता के साथ कहना चाहूंगी कि अवधी लोकसाहित्य के सूक्ष्म अवलोकन तथा विश्लेषण की आवश्यकता है। अवधी लोकसाहित्य के प्रत्येक अंग ने अवध के लोकजीवन को उसकी एक-एक गति, ताल और लय के साथ पकड़ने की कोशिश की है। मेरा विश्वास है कि अवधी ही नहीं, देश के अन्य सभी भागों के लोक साहित्य में भी जीवन से जुड़ाव तथा उसके साम्य-वैषम्य को रेखांकित किया जा सकता है. अध्ययन की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. हिंदी भाषा – डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 48
2. हिंदी भाषा – डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 48
3. ग्राम साहित्य – पहला भाग – रामनरेश त्रिपाठी, ग्राम साहित्य की रूपरेखा, पृ. 38
4. आलेख- 'अवधी लोकसाहित्य' आनंद पाण्डेय, पत्रिका 'भाषा' – लोकसाहित्य विशेषांक, जुलाई-अगस्त 2005, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, पृ. 143
5. आलेख- 'अवधी लोकसाहित्य' आनंद पाण्डेय, पत्रिका 'भाषा' – लोकसाहित्य विशेषांक, जुलाई-अगस्त 2005, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, पृ. 146

2015, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)